संपादकीय

उपन्यास अपने समय और समाज के रक्तचाप को समग्रता के साथ नापता आ रहा है। इस दृष्टि से वह समाज की समग्र आलोचना है, अपने समय का आलोचनात्मक इतिहास है और इसके आधार पर उपन्यास भविष्य के प्रति आगाह भी करता है। इसलिए आधुनिक काल में साहित्य के केन्द्र में उपन्यास प्रतिष्ठित हो गया है। अब वह रोमांस नहीं, समकाल का जीवन यथार्थ है, जिसे वह इतिहासबोध के साथ प्रस्तुत करता है। कथा कहना आज उपन्यास का लक्ष्य नहीं रह गया है, चाहे वह सामयिक, ऐतिहासिक या मिथकीय तंतुओं पर बुने गये हो। मनोरंजन उसका मुख्य उद्देश्य नहीं है, साथ ही कथातत्व उसे फीचर, पत्रकारिता आदि से अलग करके रोचक कलाकृति का रूप देता है। इस प्रकार उपन्यास एकसाथ कई आयामों के साथ प्रकट होता है, इसी कारण उसमें प्रयोग व शिल्पगत वैविध्य की अनिवार्य मांग होती है। कहीं मौलिक संरचना, कहीं विदेशी प्रभाव को ग्रहण करके मिश्रित शिल्पबंध के साथ उपन्यास का अवतरण होता है।

उपन्यास की सही आलोचना नहीं के बराबर ही हो रही है। जबकि उपन्यास की समग्र आलोचना समय की मांग है। हिन्दी उपन्यास के समग्र अध्ययन का कार्य कठिन तो है लेकिन अनिवार्य भी है। हिन्दी साहित्य के इतिहास ग्रंथों तथा उपन्यास के इतिहास ग्रंथों में उपन्यासों का उल्लेख टिप्पणी के रूप में मिलता है और कहीं नामोल्लेख मात्र उपलब्ध है। दो तीन आलोचनात्मक ग्रंथ तो उपलब्ध हैं पर उसकी सीमायें भी हैं। ऐसे ग्रंथों मे इने-गिने उपन्यासों और उपन्यासकारों पर मात्र विचार-विमर्श हुआ है। एक योजना बनाकर गंभीरता के साथ सरकारी या गैर सरकारी संस्थाओं को इस ओर कदम रखना चाहिए। इसके लिए धन, समय और कठिन मेहनत के अलावा आलोचकों का समर्पण भी आवश्यक है। हर उपन्यासकार पर प्रत्येक लेख और इसके साथ युगानुसार प्रमुख प्रवृत्तियों के आधार पर भी अलग-अलग लेख की ज़रूरत है। इस तरह का गंभीर अध्ययन साहित्य जगत की मांग भी है। इसे मद्देनजर रखते हुए हम रामायण की गिलहरी की भूमिका निभाने का प्रयास कर रहे हैं।

जन विकल्प का यह अंक सन् 1951 और 2000 के बीच प्रकाशित प्रमुख उपन्यासों पर केन्द्रित है। हर प्रतिष्ठित लेखक के एक श्रेष्ठ उपन्यास पर आधारित लेख इसमें शामिल हैं। यथासमय लेख प्राप्त नहीं होने के कारण *बूंद और समुद्र*, *झूठा सच*, *धूप छाही रंग*, *मुर्दाघर*, *कठगुलाब*, *लोकऋण*, *डूब*, *परछाईं नाच*, *यह अन्त नहीं* जैसे महत्वपूर्ण उपन्यासों को जोड़ नहीं पाये। फिर भी स्वातंत्र्योत्तर जन मन के मोह एवं मोहभंग, आस्था एवं आकांक्षा तथा उनकी कारुणिक जीवन-स्थिति एवं प्रतिरोध को अभिव्यक्त करते कई उपन्यासों को प्रस्तुत करने का प्रयास यहाँ हुआ है। इनमें आयातित आधुनिकता बनाम देशज आधुनिकता, सांप्रदायिकता विरोध एवं धर्मनिरपेक्षता का आग्रह, दलित जीवन की समस्यायें, स्त्री मुक्ति संघर्ष आदि मुद्दों से मुखातिब होते उपन्यासों पर पुनर्विचार किया गया है। आगे 2000 के बाद प्रकाशित उपन्यासों पर केन्द्रित एक अंक निकालने की योजना है, जो अधिक समग्रता से निकालने की उम्मीद के साथ विदा।

पी. रवि

अनुक्रम

	संपादकीय		
1.	उपन्यास : सभ्यता और इक्कीसवीं सदी	वैभव सिंह	7
2.	*मैला आंचल* : लिंग-भेदी नैतिकता की सर्जनात्मक आलोचना	विनोद तिवारी	24
3.	औपन्यासिक कथा-सूत्र बनाम स्वतंत्रता आन्दोलन	नीलाभ कुमार	36
4.	अजीब-सा आत्मीय प्रेम के अकेले *वे दिन*	धन्या के.पी.	42
5.	नुक्ता-चीं है गमे-दिल, उसके सुनाये न बने उर्फ़ *आधा गांव*	बीरपाल सिंह यादव	48
6.	ग्रामीण भारत का सच बनाम *अलग अलग वैतरणी* की रचना प्रक्रिया	रवि रंजन	58
7.	व्यंग्य के विभिन्न आयाम	ए.आर. विजयकुमार	64
8.	धरती के वंचितों की गाथा : *धरती धन न अपना*	सेतुलक्ष्मी एन.आर.	72
9.	*पुनर्नवा* : आकुल अंतर एवं आत्मदाह का आलोकित आख्यान	पुनीतकुमार राय	78
10.	दलित की मौत पर राजनीति का महाभोज	अनिल कुमार	85
11.	ज़िन्दगी की सपाटबयानी : *ज़िन्दगीनामा*	शैलजा के.	90
12.	आदमीयत को बचाने का इकलौता संघर्ष	प्रभाकरन हेब्बार इल्लत	98
13.	प्रेम की अनिवार्य शर्त की संभावना की खोज	पल्लव	105
14.	*परिशिष्ट* : जातीय दंश और जातीय दर्प की कथाई	आर. शशिधरन	109
15.	*सूखा बरगद* : स्वातंत्र्योत्तर मुस्लिम समाज का यथार्थ	अजित प्रियदर्शी	118
16.	अनजानी दुनिया का सच	रामप्रसाद रजबर	128
17.	*मय्यादास की माड़ी* : मानवीय त्रासदी का रूपक	ज्योतिष जोशी	135
18.	स्वाधीनता आन्दोलन के दौर की ऐतिहासिक-सामाजिक दास्तान	अनुराजी पी.आर.	141
19.	*पाहीघर* : उपन्यास के बहाने इतिहास	तरसेम गुजराल	150
20.	स्वतंत्रतापूर्व मुस्लिम समाज की खोज	पी. प्रिया	158
21.	*चाक* की स्त्रियाँ	रम्या बालन	164
22.	अवरुद्ध बाइपास में विकल्प ढूँढता राष्ट्र	सिन्धु ए.	169
23.	*आवां* में निहित सामाजिक सरोकार	रश्मि रावत	178
24.	दलित मुक्ति की आग़ाज़ : *मुक्तिपर्व*	नामदेव	187
25.	जंगल आदिवासी की जननी है : संदर्भ *जंगल के दावेदार*	उपुल रंजित	192